शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.II, pp (689-695) April - June 2019 689

पर्यावरण का उभरता संकट

कु सोनिया वर्मा
पी0 एच0 डी0 शोध छात्रा राजनीति विज्ञान विभाग,
इस्माईल नेशनल महिला पी0जी0 कॉलिज, मेरठ उत्तर प्रदेश भारत
Email: soniyaverma807@gmail.com

सारांश

पर्यावरण के विषय में अन्तर्राष्ट्रीय जगत की चिंता द्वितीय महायुद्ध के बाद देखने को मिलती है। महायुद्ध के विध्वंस ने इस बात को रेखांकित किया था कि आधुनिक हथियार पर्यावरण के लिए कितने खतरनाक साबित हो सकते है। बमबारी ने ऐतिहासिक नगरों को तबाह कर दिया था और हरे–भरे खेत बंजर कब्रिस्तानों में बदल गए थे। एटम बम के प्रयोग ने पर्यावरण के लिए नई चुनौती पैदा कर दी थी। हिरोशिमा और नागासाकी के अनुभव से यह बात सामने आ चुकी थी कि एक बार एटमी हथियार का प्रयोग करने पर भी वर्षो तक वातावरण प्रदूषित हुआ पर दोनों महाशक्तियों के बीच वर्षो तक चलने वाली प्रतिस्पर्धा में सैकड़ों परमाणविक हथियारों के परीक्षण हुए। रेडियो विकिरण के कुप्रभाव से सिर्फ सीधे प्रभावित लोग ही रोगग्रस्त नही होते बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी कैंसर का खतरा कई गुना बढ़ जाता है।इन बातो को ध्यान में रखकर ही पहले वायुमंडल में फिर अंतरिक्ष तथा सागर तल में ऐसे परीक्षणों पर रोक लगाने वाली संधिया सम्भव हुई।

मुख्य शब्दः *पर्यावरण, अन्तर्राष्ट्रीय जगत, परमाणविक हथियार, एटमबम, महायुद्ध, आधुनिक हथियार, संधिया।*

प्रस्तावना

पर्यावरण के विषय में अन्तर्राष्ट्रीय जगत की चिंता द्वितीय महायुद्ध के बाद देखने को मिलती है। महायुद्ध के विध्वंस ने इस बात को रेखांकित किया था कि आधुनिक हथियार पर्यावरण के लिए कितने खतरनाक साबित हो सकते हैं। बमबारी ने ऐतिहासिक नगरों को तबाह कर दिया था और हरे–भरे खेत बंजर कब्रिस्तानों में बदल गए थे। एटम बम के प्रयोग ने पर्यावरण के लिए एक नई चुनौती पैदा कर दी थी। हिरोशिमा और नागासाकी के अनुभव से यह बात सामने आ चुकी थी कि एक बार एटमी हथियार का प्रयोग करने पर भी वर्षो तक वातावरण प्रदूषित रहता है। एटमी हथियारों का प्रयोग भले ही दोबारा कभी नही हुआ पर दोनों महाशक्तियों के बीच वर्षो चलने वाली प्रतिस्पर्धा में सैकड़ों परमाणविक हथियारों के परीक्षण हुए। दक्षिण–पश्चिमी प्रशांत महासागर में अमेरिकी तथा फ्रांसीसी परमाणविक परीक्षणों से पैदा होने वाले प्रदूषण की मार बेगुनाह जापानी मछुआरों पर पड़ी।रेडियों विकण के कुप्रभाव से सिर्फ सीधे प्रभावित लोग

ही रोगग्रस्त नही होते बल्कि आने वाली पीढ़ियो के लिए भी कैंसर का खतरा कई गुना बढ़ जाता है। इन बातों को ध्यान में रखकर ही पहले वायुमंडल में फिर अंतरिक्ष तथा सागर तल में ऐसे परीक्षणों पर रोक लगाने वाली संधिया सम्भव हुई।

पर्यावरण का उभरता संकट

1970 के दशक के आरंभ तक यह बात जगजाहिर हो चुकी थी कि किसी संक्रामक महामारी की तरह ही पर्यावरण के प्रदूषण का संकट भी ऐसा है जिससे व्यक्ति अपने घर में बैठा भी निरापद नही रहता।

इन्ही वर्षों मे कई भीमकाय तेल वाहक टैंकर दुर्घटनाग्रस्त हुए और उनसे रिसने वाले तेल ने समुद्र के पानी के साथ बह हजारों मील दूर तट को प्रदूषित किया। इस तरह दुर्घटना से हुए प्रदूषण के लिए किसे जिम्मेदार ठहराया जाये और कैसे मुआवजा देने के लिए बाध्य किया जाये। दुर्घटना किसी भी राष्ट्र.राज्य के क्षेत्र से बाहर घटी हो, प्रभावित राज्य राहत और न्याय के लिए व्याकुल रहता था।

1972 में स्वीडन की राजधानी स्टोकहोम में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में पहले अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें श्रीमती इंदिरा गाँधी की भूमिका महत्वपूर्ण रही श्रीमती गाँधी ने जहाँ एक और पर्यावरण से संरक्षण को प्राथमिकता देना बेहिचक स्वीकार किया, वहीं उन्होंने इस बात का जोरदार समर्थन किया कि इस मुद्दे का समाधान विकास की समस्या के साथ जोड़कर ही ढूँढा जाना चाहिए। श्रीमती गाँधी ने इस बात को भी रेखांकित किया कि पर्यावरण के लिए वर्तमान मे जो संकट उत्पन्न हुआ है उसके लिए औपनिवेशिक शक्तियाँ कम जिम्मेदार नहीं।

पूँजीवादी जीवन– यापन शैली में फिजूलखर्ची, स्वार्थी, उपभोक्तावादी मानसिकता प्रबल थी जबकि भारत जैसे विपन्न देशों में गाँधीवादी सोच के प्रति गहरा आकर्षण था, जहाँ यह बात सहज स्वीकार की जाती थी कि प्रकृति का भंडार हरेक मनुष्य की जरूरत को पूरा करने के लिए तो भरा–पूरा है, पर किसी समुदाय या राष्ट्र विशेष के लालच की तृप्ति में असमर्थ ही सिद्ध होता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वातावरणीय प्रदूषण

स्टोक होम सम्मेलन 1972 के वक्त यह आशा जगी थी कि शायद आने वाले वर्षो में पर्यावरण अंतराष्ट्रीय राजनीति में एक केन्द्री मुदद्ा बनेगा पर विश्वव्यापी स्तर पर घटनाक्रम ने इसे एक दशक से भी अधिक वर्षों के लिए हाशिये पर विस्थापित कर दिया। वियतनाम युद्ध की समाप्ति, चीन में माओ युद्ध का अंत, तनाव–शैथिल्य की प्रक्रिया उथल–पुथल भरे थे कि पर्यावरण को इनके बराबर तवज्जो नही दी जा सकी। स्वंय भारत में आपातकाल की घोषणा और फिर श्रीमती गाँधी के अपदस्थ होने ने, जनता सरकार के गठन ने पर्यावरण को अंतर्राष्ट्रीय संकटो की प्राथमिकता सूची में और भी नीचे गिरा दिया। यूरोपीय एकीकरण ने तेजी पकड़ी और इसने भी पर्यावरण से लोगों का ध्यान बटाया।

इस सबका अर्थ यह नही निकाला जाना चाहिए कि इन वर्षो में पर्यावरण के विषय में चिंताए समाप्त हो गई। धरती के वायुमण्डल में ओजोन परत में छेद होना अक्सर सुखिर्यो में छाया रहा वैज्ञानिकों के अनुसार इसका कारण हाइड्रो कार्बन ईंधन का अंधाधुंध उपयोग था जिससे सी0एफ0सी0 गैसे वायुमंडल में अप्राकृतिक रूप से फैलती है और ओजोन परत को पतला और भंगुर बना देती है। इसके बाद सूरज से पृथ्वी तक आने वाली पैराबैंगनी किरणें कहीं अधिक खतरनाक बन जाती है। दक्षिण गोलार्द्ध में गोरो में कैंसर की बढ़त का कारण भी ओजोन परत में छेद को ही बतलाया गया।

परमाणु अस्त्रों –शस्त्रों के दुष्परिणाम

कुछ और वैज्ञानिकों की चिंता परमाणविक जाड़े (न्यूक्लियर विंटर) को लेकर रही। इनके अनुसार परमाणविक हथियारों के युद्ध में विस्फोटक के बिना ही निरंतर किए जा रहे ज्यादा से ज्यादा मार वाले परमाणविक अस्त्रों के परीक्षणों के वायुमंडल को बुरी तरह प्रदूषित कर दिया था। जिसके प्रभाव से आने वाले वर्षो में धरती का तापमान तेजी से कम हो सकने का संकट पैदा हो गया था। परमाणविक जाड़े का यह मौसम वर्षो तक चल सकता था और भूतल पर सभी प्राणियों और वनस्पतियों का जीवन जोखिम में डाल सकता था। हाँलाकि यह भविष्यवाणी बहुत जल्द ही निर्मूल सिद्ध हो गई फिर भी इसमें आम आदमी के मनमें पर्यावरण समस्याओं के प्रति गहरी दिलचस्पी पैदा की।

विंडबना यह कि कुछ ही वर्ष बाद एटमी जाड़े के संकट कास्थान **तपती–धरती (ग्लोबल वार्मिंग)** और मानवी हस्तक्षेप के कारण **मौसम परिवर्तन (क्लाइमेट चैंज)** ने ले लिया। इस बारे में अधिकांश वैज्ञानि एक मतहै कि धरती का तापमान असाधारण और अस्वाभाविक रूप से तेजी से बढ़ रहा है। **एलनीनो** जैसे चक्रवात ही, **रीट** जैसे तूफान या फिर **सूनामी**, इन सभी ने यह बात रेखांकित की है कि प्रकषति अब अपने गुस्से का प्रदर्शन जल्दी–जल्दी करने लगी है। उपग्रह से प्राप्त चित्र भी इस बात का प्रमाण देते है कि उत्तरी ध्रुव में बर्फ पिघल रही है और दुनिया भर मे हिमनद पीछे सरक रहे है। अनियोजित शहरीकरण और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बहुमूल्य वर्षा वनों को नष्ट कर रहा है और दुलर्भ जैव विविधता लुप्त होती जा रही है।

हम यह कहकर अपनी जिम्मेदारी से छुटकारा नही पा सकते है यह सरदर्द तो भविष्य में आने वालों का है। प्रदूषण के संकट ने और इसकी नई किस्मों ने दैत्याकार रूप धारण कर लिया है वह मुहबाये हमारे सामने खड़ी है। इनमें परमाणविक भटिट्यों में पैदा होने वाले रेडियो धर्मी ईंधन की राख रासायनिक प्रदूषण और इलैक्ट्रॉनिक उपकरणजनित प्रदूषित सामग्री का निपटान प्रमुख है। प्राण रक्षक दवाओं के अदूरदर्शी उपयोग ने कुछ जीवाणुओं और विषाणुओं को ऐसी प्रतिरोध क्षमता दे दी है जिनसे उनके द्वारा पैदा होने वाली बीमारियों का इलाज असाध्य होता जा रहा है एचआईवी एडस हो, एबोला वायरस या बर्डफ्लू, किसी न किसी तरह इन सभी का सम्बन्ध पर्यावरण के संरक्षण के साथ जुड़ा है।

खाद्यपूर्ति एवं प्राकृतिक संरक्षण

खाद्यान सुरक्षा का अतिसंवेदनशील मुद्दा पर्यावरण के नाजुक संतुलन के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हैं कहीं यह संकट जलाभाव के कारण उत्पन्न होता है तो कहीं जलबाहुल्य (बाढ़) के कारण। इसी तरह ऊर्जा सुरक्षा और ऊर्जा संकट भी अभी तक अभिन्न रूप से पर्यावरण केंद्रित बहस ही रहा है। कोयला और पेट्रोल–डीजल जैसे हाइड्रोजन जनित ईंधन के उपयोग से वायुमंडल में व्याप्त होने वाली कार्बन गैसों के कारण धरती के तपने और मौसम बदलने की समस्या का उल्लेख किया गया है। मिसाल के तौर पर जल–विघुत ऊर्जा उत्पादन के लिए बड़े–बड़े बांधो का निर्माण जरूरी है। इस कामसे डूब प्रभावित क्षेत्र का नैसर्गिक प्राकषतिक संतुलन नष्ट होने के साथ–साथ बहुत बड़ी संख्या में विस्थापित शरणार्थी भी एक विस्फोटक राजनैतिक संकट उत्पन्न करते है। यह बात नर्मदा सरोवर से लेकर टिहरी तक बार–बार उजागर हो चुकी है। दुनिया के अनेक देश भी इस समस्या से मुंह नही चुरा सकतें। चीन ने तो गहरी –घाटियो में बांध निर्माण से भी पर्यावरण के लिए संकट पैदा कर दिया है,चीन पर यह आरोप लगाया जाता रहा कि उसने आबादी के लिए घनत्व वाले तिब्बत –भू भाग को अपने परमाणविक कचरे को निपटाने के लिए एक विशाल कूडेदान में बदल दिया।

यहाँ एक और बात याद दिलाने की जरूरत है कि 1984 में भोपाल में एक ऐसी त्रासदी घटी जिसकी कोई मिसाल मानव इतिहास में नही। अमेरिका बहुराष्ट्रीय उधम **यूनियन कार्बाइड** कंपनी की एक फैक्टरी से जहरीली गैस के रिसाव के कारण हजारों निर्दोष लोगो ने दम तोड दिया और बचे रहे हजारों प्रभावित लोगो के लिए भी यह संकट पैदा हो गया कि वे अब कभी भी निरोग नही रह सकेंगे। हिरोशिमा तथा नागासिका के नागरिको की तरह ही उनकी संताने भी पीढी दर पीढी प्रदूषण से पैदा होने वाले रोगो से अभिशप्त रहेगी। इसी वर्ष श्रीमती इन्द्रिरा गाँधी की हत्या के बाद राजीव गाँधी भारत के प्रधानमंत्री बने। पर्यावरण में उनकी व्यक्तिगत दिलचस्पी कॉफी गहरी थी और एक बार फिर पर्यावरण के संरक्षण का विषय भारत मे सार्वजनिक मुद्दा बनने लगा। गंगा नदी का प्रदूषण घटाना हो या बाँध जैसी दुर्लभ प्रजातियो को बचाना हो ये ऐसे विषय थे जिनमें आम आदमी रूचि ले सकता था। इसी दौर में कुछ महत्वपूर्ण अन्तराष्ट्रीय संधियो पर हस्ताक्षर किये गये जिनका सरोकार पर्यावरण से था। इनमें जीव जंतुओं और वनस्पतियों के विनाश रोकने के लिए **साइटिस** नाम का अनुबंध तथा प्रदूषित पदार्थो निपटाने के लिए **बेसल संधिविशेष** रूप से उल्लेखनीय है इन्ही वर्षो में सस्टेनेबल डेवलपमेंट की अवधारणा विकसित हुई है, और ब्राजील के शहर रियो में दुसरे पर्यावरण शिखर सम्मेलन के आयोजन की तैयारी शुरू हो सकी ।

यह बात याद रखने लायक है कि पर्यावरण के बारे में चेतना जगाने और घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के साथ उसके जटिल रिश्तों को सामने रखने में विशेषज्ञो– वैज्ञानिको और सरकारो से कही अधिक महत्वपूर्ण भूमिका व्यक्तियो और गैर सरकारी संगठनों ने निभाई है। इनमें **चिपको आन्दोलन** के साथ **जुड़ेचन्डी प्रसाद भट्ट** और **सुन्दरलाल बहुगुणा** के नाम भारतीय सन्दर्भ मे उल्लेखनीय है। जमीनी हकीकत के साथ जुड़े इन कार्यकर्त्ताओं को डा0

स्वामीनाथन और अनिल अग्रवाल जैसे वैज्ञानिको का पूरा समर्थन मिला। इसके साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर **ग्रीन पीस** जैसे विराट संगठनो का जिक्र भी जरूरी है जिनको कार्य शैली में साधन संपन्न पूँजीवादी तर्ज की बहुराष्ट्रीय निगमो के साथ अराजकता वाली गोरिल्ला छापामारी का अदभुत समन्वय एक साथ देखने को मिलता है।

पर्यावरण संवर्द्धन में राजनीतिक अड़चने

स्टोकहोम के बाद पर्यावरण विषयक दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन 20 साल बाद ही किया जा सका यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि इन वर्षो मे पर्यावरण विषयक राजनय में कोई प्रगति नही हुई है। धरती के तपने और मौसम के बदलाव की समस्या हमेशा संकट सूची में सबसे ऊपर रखी गई। जापान के शहर क्योटो में जिस समझौते पर अधिकांश देशो ने हस्ताक्षर किये उसके लिए राजनय और अन्तर्राष्ट्रीय परामर्श कई वर्ष तक चला। इस संवाद मे जो बात उभर कर आई और विवाद का विषय बनती रही वह यह थी हाईड्रोकार्बन वाले ईधन के उपयोग सेपैदा होने वाले प्रदूषण के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार कौन है। जहाँ एक ओर अमेरिका और जापान का हट था कि अपनी बड़ी आबादी के कारण भारत और चीन जैसे देश ही इस संकट को बढ़ा रहे है, वही इन देशो का कहना था कि कुल राष्ट्रीय खपत के आधार पर नही प्रतिव्यक्ति खपत के आधार पर जिम्मेदारी तय की जानी चाहिए। इस बात को अनदेखा करना कि जिन सम्पन्न पश्चिमी देशो ने अपनी उपभोक्ता वादी जीवन–यापन शैली से इस संकट को पैदा किया है वे भविष्य मे पैदा हो सकने वाले विशाल संकट का हौवा खडा कर भारत, चीन तथा अन्य विकासशील देशो के प्रगति पथ पर रोडे अटका रहे है । भारत और चीन का तर्क यह भी रहा है कि वे स्वेच्छा से इस तरह के ईधनों का प्रयोग घटाने को तैयार है यदि अमेरिका जैसे सम्पन्न देश प्रदूषण घटाने वाली टेक्नौलॉजी उन्हें रियायती कीमत पर सुलभ करायें। पश्चिमी देशों के वैज्ञानिक यह बात स्वीकार करते है कि कार्बन जनित प्रदूषण को घटाने में वर्षा वनो की महत्वपूर्ण भूमिका प्रमाणित हो चुकी है। अधिकांश ऐसे वर्षावन विकासशील देशों में स्थित है और पृथ्वी के पर्यावरण को स्वस्थ्य निरापद रखने के लिए इनका संरक्षण परमावश्यक है।

अमेरिकी तथा अन्य पश्चिमी देश बहुत कुटिलता के साथ इस मांग को अनसुना करते रहे है। बल्कि उन्होंने विकासशील देशों को विभाजित करने के लिए धूर्ततापूर्ण रणनीति क्योंटो वार्ताओं में अपनायी। संक्षेप में यह सौदेबाजी इस तरह है अमेरिका यह बात मानने को तैयार नही हुआ कि वह कार्बन ईंधन को अपने उपयोग में जरा सी भी कटौती करेगा। भविष्य मे भी किसी कटौती का वचन देने में वह टाल–मटोल करता रहा है। हॉ उसने यह बात जरूर सुझायी कि जो देश इस तरह के ईंधन के उपयोग नही करते वे अपने हिस्से का कार्बन ईंधन अमेरिका के हवाले कर दें और अमेरिका इसके एवज में उन्हें एक रकम तय वित्तीय सहायता के रूप में देगा। कार्बन विनिमय का प्रस्ताव एक तरह से क्योटो सम्मेलन को असफल बनाने की साजिश ही कहा जा सकता है। इस समझौते पर हस्ताक्षर करने वाला अमेरिका प्रमुख राष्ट्र हैं।

पर्यावरण के साथ जुड़े कुछ और ऐसे मुद्दे है जो मौसम के बदलाव और धरती के तपने की तरह सार्वभौम तो नही पर क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को संकट ग्रस्त बनाते रहे है। सिन्धु, गंगा, बहमपुत्र नदी प्रणाली ऐसे उदाहरण है जो इस सन्दर्भ में चर्चित रहे है। विंडबना यह है कि संकट की स्थिति में भी अनेक राष्ट्र–राज्य मानवीय संवेदना से वंचित और बैर भाव से ग्रस्त ही नजर आते है। अंडमान–निकोबार क्षेत्र मे अंतर्राष्ट्रीय टोलियों द्वारा राहत कार्य को भारत सरकार ने अनुमति नही दी क्योंकि यह पूरा क्षेत्र उसकी नजर में सामरिक दृष्टि से अतिसंवेदनशील था और यहाँ उसका एक बडा नौसैनिक अडड्ा स्थित था। इसी तरह जब जम्मू–काश्मीर राज्य में पाकिस्तान अधिकृत भू–भाग भूकम्प की चपेट मे आया तो पाकिस्तान को भारतीय सैनिकों द्वारा प्रदान सहायता स्वीकार करने में अकारण हिचकिचाहट महसूस होती रही क्योंकि वे इस बात को स्वीकार नही कर पा रहे थे कि इसके बाद वह कैसे इस क्षेत्र के नागरिको को यह समझा पायेंगे कि भारत उनका जन्मजात शत्रु है जो हमेशा शत्रु ही बना रहेगा।

विकसित एंव विकासशील देशों की असहमतिपूर्ण स्थिति

पर्यावरण के संरक्षण से जुड़ी पूरी बहस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विकासशील देशों की क्षमता को कुंठित करने की साजिश का हिस्सा बड़ी आसानी से बनाई जा सकती है। कभी प्रदूषण के नाम पर तो कभी पर्यावरण के संरक्षण असमर्थता पूंजीवादी देश खासकर अमेरिका और यूरोपीय समुदाय के सदस्य मनमाने निषेध लगाकर रोकते रहे है और इस शक को बेबुनियाद नही का जा सकता।

पर्यावरण विषयक एक महत्वपूर्ण सम्मेलन 2002 में जोहान्सबर्ग में संपन्न हुआ। कहने को यह सम्मेलन पर्यावरण केन्द्रित था पर इसके उद्घाटन के पहले ही जो मुद्दे राजनय में सुर्खियों में छाने लगे उनका दूर–दराज का ही संबध पर्यावरण के साथ जोड़ा जा सकता है। भारत में सामाजिक विषमता बढ़ाने वाली जातीय व्यवस्था अंतर्राष्ट्रीय जगत में लिंग भेद और नस्लवाद तथा गरीबी जैसे मुद्दे पर्यावरण की समस्या को पीछे धकेलने में सफल हुए। संपन्न पश्चिमी देशों का तर्क हैं कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं हैं कि उनके विलासिता पूर्ण उपभोग के कारण ही दुलर्भ प्रजातियों के लुप्त होने का संकट पैदा हुआ है। वे इस बात के लिए अशिक्षित, लालची अफ्रो–एशियाई 'गवारों' को और उनकी भ्रष्ट सरकारों को जिम्मेदार ठहराते है। कस्तूरी मषा अथवा असाध्य रोगों के उपचार के लिए बनाई जाने वाली दवाईयों में काम आने वाली दुलर्भ वनस्पतियों सभी पर यह बात लागू होती है। फिलहाल इस बात की कोई संभावना नजर नहीं आती कि पर्यावरण के संकट को समग्र रूप से देखना–परखना निकट भविष्य में सम्भव होगा या फिर इसे सामरिक महत्व का मुद्दा समझ सामूहिक हित में सहकारी ढंग से निपटाया जा सकेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ

1 पंत पुष्पेश, '21 वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध' Mc Graw Hill Education India Private Limited New Delhi 2015.

2 कुमार अजेय, कुकरेजा वीना *'अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सिद्धान्त एक परिचय'* पीर्यसन प्रकाशन 2011.

3 सिंहल डॉ0एस0सी *''राजनीति–चिंतन की रुपरेखा'* मयूर पेपरबैक्स 2012.

4 फाड़िया बी0एल0 *'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति'* साहित्य भवन पब्लिकेशन 2012.